सुमन परमार

पुस्तक चर्चा

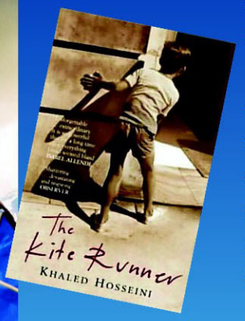

काइट रनर कहानी है आमिर की। आमिर अफगानिस्तान में बड़ा हुआ – अपने दोस्त हसन के साथ खेलते, पतंगें उड़ाते। लेकिन 1979-80 में हुए सोवियत हमले के बाद उसे अपने पिता के साथ देश छोड़कर अमरीका जाना पड़ा। कहानी यहीं से शुरू होती है। आमिर को लगता है कि उसके दोस्त हसन ने हमेशा उसका साथ दिया लेकिन वो मुश्किल समय में उसका साथ छोड़कर भाग गया। उसे लगता था कि उसके पिता हसन को उससे ज़्यादा प्यार करते हैं। ऐसे में एक दिन पतंग महोत्सव वाली सुबह वो हसन को मुसीबत में अकेला छोड़कर भाग जाता है। बाद में वो खुद को हसन का अपराधी महसूस करता है। लेकिन उसके पिता के दोस्त रहीम चाचा उसे फोन पर कहते हैं, "फिर से अच्छाई को पाने का एक रास्ता अब भी मौजूद है। अपनी गलतियों से सीख लेकर हम आनेवाले जीवन में अच्छाई की राह पहचान सकते हैं।"

आमिर बीस साल बाद अफगानिस्तान वापिस आता है और तालिबान के क्रूर शासन में फँसे हसन के बेटे सोहराब को मुक्त कराता है। उसे यह भी पता चलता है कि हसन उसका दोस्त ही नहीं, भाई भी था। वह सोहराब में अपने दोस्त की शक्ल देखता है।

यह उपन्यास दुनिया भर में बहुत सराहा गया है। इसे लिखने वाले खालिद हुसैनी का पूरा बचपन अफगानिस्तान में बीता और अब वे अमरीका में रहते हैं। *काइट रनर* पर एक फिल्म भी इसी नाम से बनी है।

जनवरी बर्फ और पतंगों का महीना भी तो होता है तो इस उपन्यास का वही अंश तुम्हें पढ़वाते हैं जिसमें बर्फ और पतंगों के किस्से हैं।

जिस दिन मौसम की पहली बर्फ पड़ती है

मैं हर साल यही करता हूँ। मैं सर्दी में कुड़कुड़ाते हुए अपने पजामे में ही घर से बाहर निकलता हूँ। घर से बाहर की पगडण्डी, अब्बा की कार, दीवारें, पेड़, खपरैल की छतें और ऊँची चोटियाँ सभी बर्फ की चादर के नीचे दबे हैं। ऊपर नीला बेदाग आसमान है। और बर्फ इतनी सफेद कि आँखें चौंधिया जाएँ। मैं मुट्ठी भर ताज़ा बर्फ अपने मुँह में भर लेता हूँ। मैं उस गहरी शान्ति में कान लगाकर गायों के रम्भाने की आवाज़ सुनता हूँ। मैं नंगे पैर ही घर की सीढ़ियाँ उतरता हूँ। हसन को आवाज़ लगाता हुआ, "बाहर आओ हसन, बाहर आओ और देखो!"

जाड़े का मौसम काबुल के हर बच्चे का पसन्दीदा मौसम है। नहीं, शायद सबका नहीं। उन बच्चों का जिनके पिता सर्दी से बचने के लिए अच्छा-सा लोहे का स्टोव खरीद सकते हैं। बच्चों के खुश होने की वजह साफ है – जाड़ों में स्कूलों की छुट्टियाँ हो जाती हैं। स्कूल बन्द होने का मतलब है लम्बे गुणा-भाग और बुल्गेरिया जैसे देशों की राजधानी का नाम रटने से छुटकारा। मेरे लिए सर्दियों का मतलब है गरम स्टोव के पास बैठकर हसन के साथ ताश खेलने की शुरुआत, हर मंगल की सुबह मुफ्त रूसी फिल्में देखने सिनेमा जाना, पार्क जाना, पूरी सुबह बर्फ के गुड्डे बनाने के बाद दोपहर के खाने में चावल के ऊपर शलजम का मीठा कोरमा डालकर खाना।

और हाँ, पतंगें! उन्हें उड़ाना और उनके पीछे भागना।

लेकिन कुछ बदकिस्मत बच्चों के लिए सर्दियाँ स्कूल के सत्र का अन्त नहीं थीं। ठण्ड में कुछ ऐसी पढ़ाई होती थी जिसे अगर इच्छा हो तो किया जा सकता था। कोई भी बच्चा अपनी इच्छा से इसे नहीं पढ़ता था। यह तो उनके माता-पिता की चाहत थी जो उन्हें पूरी करनी पड़ती थी। लेकिन मेरी खुशनसीबी कि मेरे बाबा उनमें से नहीं थे। एक बच्चा मुझे याद आता है, अहमद। वो सड़क के उस पार रहता था। उसके पिता किसी तरह के डॉक्टर थे। उसे मिर्गी के दौरे आते थे और वो हमेशा ऊनी स्वेटर और मोटे-काले फ्रेम का चश्मा पहने रहता था। आसिफ उसे हमेशा परेशान करता। मैं अपने कमरे की खिड़की से उनके नौकर को रास्ते से बर्फ हटाते और उनकी काली ओपेल कार के लिए रास्ता बनाते देखा करता था। मैं हमेशा अहमद को ऊनी स्वेटर पहनकर अपने पिता के साथ कार में बैठकर जाते देखता। अहमद का स्कूली बस्ता किताबों और पेंसिलों से भरा होता। मैं उन्हें तब तक देखता जब तक उनकी कार अगले मोड़ से घूमकर आँखों से ओझल न हो जाती। उसके बाद मैं फलालैन का पजामा पहने फिर अपने बिस्तर में घुस जाता। अपनी ठुड्डी तक कम्बल खींचकर मैं उत्तर की ओर बर्फ से ढँकी पहाड़ियों को देखा करता। मैं उन्हें तब तक देखता जब तक मेरी आँखें नींद से भारी नहीं हो जातीं।

मुझे काबुल की सर्दियाँ प्यारी हैं। रात के वक्त अपनी खिड़की पर बर्फ की हल्की टकराहट से मुझे प्यार है। अपने काले रबर के जूतों के नीचे बर्फ की कड़कड़ाहट से मुझे प्यार है। मुझे लोहे वाले स्टोव की गर्माहट और जिस तरह से हवा हमारे अहाते और सड़क से गुज़रती है, उससे प्यार है। लेकिन मुझे ठण्ड सबसे ज़्यादा इसलिए अच्छी लगती क्योंकि जब पूरी वादी बर्फ से ढँकी होती थी तो मेरे और बाबा के बीच की बर्फ थोड़ी-थोड़ी पिघल रही होती थी। इसकी वजह थी पतंगें। बाबा और मैं एक ही छत के नीचे अलग-अलग

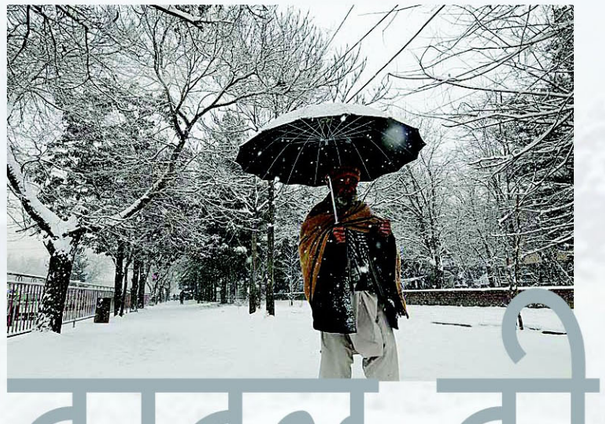

काबुल का साटया

दुनियाओं में रहते थे। पतंग हमारी अलग-अलग दुनियाओं को साथ रहने का एक मौका देती।

हर सर्दियों में काबुल और आसपास के शहरों में पतंग लड़ाने की प्रतियोगिता होती थी। और अगर आप काबुल में के बच्चे हैं तो यह निश्चित रूप से सर्दियों के मौसम का मुख्य आकर्षण था। उस प्रतियोगिता की पिछली रात मैं हमेशा पूरी रात सो नहीं पाता था। करवटें बदलता रहता। दीवारों पर परछाई से जानवरों की आकृतियाँ बनाता रहता। यहाँ तक कि कम्बल लपेटकर अँधेरे में बालकनी में जा बैठता। मुझे बंकर में छिपकर सो रहे उस सैनिक जैसा अहसास होता जो कल किसी मुख्य लड़ाई पर जाने वाला है। और यह कोई बहुत दूर की कल्पना भी नहीं थी। काबुल में पतंग लड़ाना किसी लड़ाई पर जाने जैसा ही था।

जैसे आपको हर लड़ाई की तैयारी करनी पड़ती है उसी तरह से हसन और मैं अपनी पतंगें तैयार करते थे। हम अपने साप्ताहिक जेबखर्च से पैसे बचाते और उन्हें चीनी-मिट्टी के एक घोड़े में जमा करते। बाबा वो गुल्लक हेरात से लाए थे। जब ठण्डी हवाएँ और ठण्डी होने लगतीं और बर्फबारी बढ़ जाती तो हम उस घोड़े के नीचे लगी लड़ी खोलकर सारे पैसे निकाल लेते। बाज़ार से बाँस, गोंद, धागा कागज़ लाते। हर दिन कई घण्टे बाँस छीलते ताकि पतंग के बीच का हिस्सा मज़बूत हो। पतंगी कागज़ काटते जो मुड़ने-खुलने में आसान होता है। और हाँ! उसके बाद हमारा सबसे मुख्य काम था माँझा या तार बनाना। अगर पतंग बन्दूक है तो शीशे की परत वाला माँझा उसकी गोली। हम बगीचे में जाते और पाँच सौ फीट लम्बे तार की धार को शीशे के चूरे और गौंद पर तेज़ करते। फिर हम उन्हें पेड़ों के बीच में बाँधकर सूखने के लिए छोड़ देते। अगले दिन हम हथियार रूपी इस माँझे को लकड़ी पर लपेट लेते। जब तक बर्फ पिघलती और वसन्त शुरू होता काबुल के हर बच्चे की उँगलियों पर उनकी मेहनत के निशान होते। मुझे याद है कैसे स्कूल के पहले दिन मेरे सारे दोस्त युद्धक्षेत्र में लगी अपनी चोटों की तुलना करते। माँझे की काटों में टीस उठती रहती और हफ्तों तक वो ठीक नहीं होतीं। फिर भी मुझे उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वे उस प्यारे मौसम की निशानियाँ थीं जो बहुत जल्दी बीत गया था। फिर हमारा मॉनीटर सीटी बजाता और हम सब एक लाइन में अपनी कक्षा की ओर बढ़ जाते – आने वाले जाड़ों का इन्तज़ार करते हुए। जबकि अभी तो हमारे सिर पर स्कूल में एक लम्बा समय बिताने की तलवार लटक रही होती थी।

लेकिन बहुत जल्दी यह साफ हो गया था कि हसन और मैं पतंगें बनाने से ज़्यादा लड़ाने में होशियार थे। हमारी बनाई पतंगों की कुछ ना कुछ कमी हमेशा उसके पतन का कारण बनती। इसलिए बाबा ने पतंगें सैफू से खरीदनी शुरू कर दीं। सैफू एक लगभग नेत्रहीन बुज़ुर्ग मोची था। वो शहर का सबसे मशहूर पतंगवाला भी था। उसकी कोठरीनुमा दुकान काबुल नदी के रेतीले तट के दक्षिण में थी। मुझे याद है हमें उसकी जेलनुमा काल-कोठरी में घुटने मोड़कर घुसना पड़ता था।

फिर एक दरवाज़ा उठाकर लकड़ी की सीढ़ियों से उतरकर उस अँधेरे भूतल में जाना पड़ता जहाँ वो अपनी पतंगें रखा करता था। बाबा हम दोनों को तीन-तीन पतंगें और माँझे के लच्छे खरीदकर देते। अगर मैं ज़्यादा बड़ी और लुभावनी पतंग माँगता तो बाबा वैसी ही पतंग हसन के लिए भी खरीद देते। कभी-कभी मेरी इच्छा होती कि बाबा ऐसा ना करें और मुझे ही अपना चहेता बना रहने दें।

सर्दियों में पतंग प्रतियोगिता अफगानिस्तान की पुरानी परम्परा है। यह प्रतियोगिता सुबह जल्दी शुरू होती और तब तक चलती रहती जब तक जीतने वाली आखिरी पतंग आकाश में उड़ती रहती। मुझे याद है कि एक बार यह प्रतियोगिता दिन ढलने के बाद तक चलती रही थी। लोग अपनी छतों पर और सड़कों के किनारे इकट्ठे होकर अपने बच्चों का हौसला बढ़ाते। सड़कें पतंग लड़ाने वालों से भरी होतीं जो पेंच लड़ाकर, प्रतिद्वंद्वी की पतंग काटकर, आसमान में अपनी जगह बना रहे होते। हर किसी का एक सहायक होता जैसे मेरे साथ हसन। वो माँझा पकड़ता और तार छोड़ता।...

...असली मज़ा तो तब शुरू होता जब पतंग कटती थी। तब पतंग लूटने वाले सामने आते थे। ये वे बच्चे होते जो हवाओं का पीछा करते हुए हवा में झूलती हुई, कटी पतंगों को किसी की छत, खेत, बगीचे या पेड़ से इकट्ठा करते थे। कभी-कभी यह होड़ काफी हिंसात्मक भी हो जाती थी। पतंग लूटने वालों के झुण्ड के झुण्ड सड़कों पर एक-दूसरे के पीछे भाग रहे होते जैसे, मेरी जानकारी के अनुसार स्पेन के लोग बैलों से भागते हैं। एक बार पड़ोस का एक बच्चा चीड़ के पेड़ पर पतंग लेने के लिए चढ़ा। डाली उसका बोझ सम्भाल नहीं पाई और वो तीस फीट नीचे जा गिरा। गिरते वक्त भी पतंग उसके हाथ से नहीं छूटी। चकमक

संजीव ठाकुर

ज़्यादा किसे मिलें?

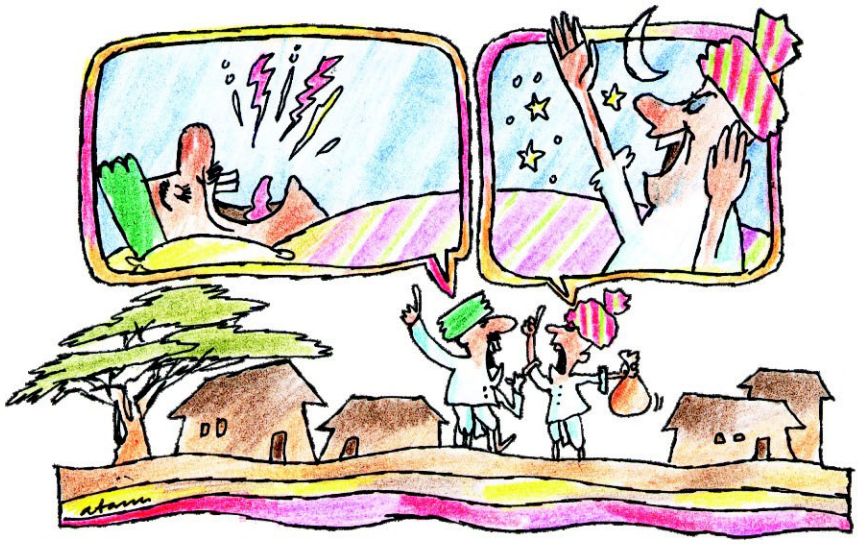

एक बार की बात है। किसी गाँव में दो अजनबी घूमते-घामते पहुँचे। शाम हो गई थी। वे रात उसी गाँव में बिताना चाहते थे। वे मुखिया के पास गए और उनसे रात गाँव में ठहर जाने की अनुमति माँगी। मुखिया ने दोनों को गाँव की अतिथिशाला में ठहरने की अनुमति दे दी। मुखिया ने कहा, "रात में आपको खाना भी मिलेगा। आप खाकर आराम से सोइए। मगर हमारे गाँव का एक नियम है...!"

अजनबियों ने पूछा, "कैसा नियम?" तो मुखिया ने कहा, "नियम यह है कि कोई अतिथि सोते हुए खर्राटे नहीं ले सकता। खर्राटे लिए तो हम उसे मार डालेंगे।"

अजनबियों ने शर्त मान ली और वे अतिथिशाला में चले गए। रात को खाना खाकर दोनों सो गए। थोड़ी ही देर में एक अजनबी खर्राटे लेने लगा। इससे दूसरे की नींद खुल गई। उसने सोचा गाँव वाले इसके खर्राटे सुनकर आते ही होंगे। अब तो जान गई। इस संकट से बचने का उसे एक विचार आया और वह ज़ोर-ज़ोर से गाने लगा। गाने की आवाज़ सुनकर मुखिया वहाँ पहुँच गया। धीरे-धीरे गाँव वाले भी पहुँच गए। सभी मिलकर गाने लगे। वे रात भर गाते रहे। दूसरे अजनबी के खर्राटे कोई नहीं सुन पाया।

सुबह उठकर जब दोनों जाने लगे तो मुखिया ने उन्हें सिक्कों से भरा एक थैला दिया और कहा, "रात हम लोगों ने काफी अच्छा समय बिताया इसलिए यह तोहफा आपके लिए है।"

थैला लेकर दोनों विदा हुए। गाँव से बाहर निकलते ही दोनों झगड़ने लगे। दोनों अपने लिए ज़्यादा सिक्कों की माँग कर रहे थे। दूसरे का कहना था, "मैंने गाना गाकर तुम्हारी जान बचाई इसलिए ज़्यादा सिक्के मैं लूँगा।" और पहला तर्क दे रहा था, "अगर मैं खर्राटे नहीं लेता तो तुम्हें गाने का मौका ही नहीं मिलता। इसलिए ज़्यादा सिक्के मैं लूँगा।"

दोनों इस बात पर देकर तक लड़ते रहे। आखिर तक वे किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पाए। क्या तुम बता सकते हो कि ज़्यादा सिक्कों का हकदार कौन है? चकमक